भगवत् कृपा

THE DIVINE GRACE

महाप्रभु स्वामिनारायण प्रणीत सनातन, सचेतन और सक्रिय गुणातीतज्ञान का अनुशीलन करने वाली मासिक सत्संगपत्रिका

वर्ष–14, अंक–7 शुक्रवार, 26 जुला. '91	सम्पादक : साधु मुकुंदजीवनदास गुरु ज्ञानजीवनदासजी जुलाई, 1991	वार्षिक चन्दा–10.00 प्रति अंक : 1.00

गुरु में दिव्यभाव—निर्दोषभाव

वही सच्चा गुरुपूजन

—गुरुहरि योगीजी महाराज

हर साल की तरह 'गुरुपूर्णिमा' का मंगलपर्व शिष्यों के जीवन में नयी उमंग, नया उत्साह, नयी सुबह, नयी रोशनी लेकर नजदीक आ रहा है...हम सब खूब भाग्यशाली हैं जो 'भारत' जैसे पवित्र व धार्मिक संस्कारों वाले देश में हमारा जन्म हुआ। भारत संतों की भूमि है। आदिकाल से सभी अवतार पुरुषों ने भी 'भारत' की कोख से ही जन्म लेना पसन्द किया और उसी कारण आज पूरे विश्व में भारत का विशेष सम्मान किया जाता है। यहाँ तक कि विदेशों में अत्यधिक भौतिक सम्पदा, ऐश्वर्य, भोग, विलास के अनेक साधन होते हुए भी प्रतिवर्ष हजारों विदेशी भारत की हिन्दू संस्कृति को प्रणाम करने, स्वयं की आत्मा के लिये सच्चे सुख की खोज करने आते ही रहते है...भारत की भूमि की विशेष महिमा इस प्रसंग से स्पष्ट होती है:—

महाराष्ट्र से एक संत विदेशों की धर्मयात्रा पर गये थे। वहाँ वैज्ञानिकों ने एक ऐसी मशीन का उपकरण तैयार किया था, जो किसी व्यक्ति के सीने पर लगाया जाये तो वह व्यक्ति में उस समय सत्त्व, रज व तम में से कौन सा गुण प्रसार हो रहा है उसे colour reflections से दिखाता था। उन वैज्ञानिकों ने उन 'संत' को नापने की चेष्टा की और मशीन सीने से लगाने की प्रार्थना की। सच्चे संत तो प्रभु की मूर्ति में अलमस्त रहते हुए सरलता का मूर्तस्वरूप होते हैं। सो उन्होंने उस मशीन को सीने पर लगा लिया....आश्चर्य की बात यह हुई कि मशीन पर कोई colour ही नहीं आया। मशीन का खूब निरीक्षण किया कि शायद खराब हो गई हो, परन्तु मशीन को अन्य व्यक्ति पर लगाने से वह सही colour दे रही थी। अर्थात् मशीन तो एकदम सही थी। अत्यधिक विचारों व आश्चर्यों में डूबे वैज्ञानिकों ने उन संत महात्मा को पूछा : कृपया बताइये, ऐसा कैसे हुआ? आप पर लगाने से हमारी मशीन ने क्यों सत्त्व, रज या तम का कोई colour नहीं दिखाया? संत महात्मा ने अत्यधिक विनम्रता से उत्तर दिया कि **'यह समझने आपको**

भारत की धरती पर जन्म लेना पड़ेगा।' सच है, प्रभु रखे संत सत्त्व, रज और तम के गुणों से परे अखंड निर्गुण भाव में स्थित होते हैं, सो वह मशीन कैसे कोई रंग दिखा भी पायेगी? धन्य है निर्गुण भाव को पाये उन संत महात्मा को और 'भारत' की पवित्र व संस्कारी भूमि को.....और इसलिए भारत की पुण्यभूमि में 'गुरु' की जो महिमा है वह विश्व में और कहीं देखने को नहीं मिलती।

प्रश्न यह भी उठता है कि जीवन में 'गुरु' की आवश्यकता क्यों? एक व्यक्ति ने रामकृष्ण परमहंस देवजी से पूछा था। 'क्या गुरु के बिना साधक अपना ध्येय यानि ईश्वर प्राप्त नहीं कर सकता? रामकृष्ण परमहंसदेवजी ने उत्तर दिया गुरु के बिना साधक अपना ध्येय तो प्राप्त कर सकता है, लेकिन स्वयं साधन करके पाने में खूब समय लग जायेगा। फिर उन्होंने इसका एक सुन्दर उदाहरण दिया कि देखो सामने गंगा में एक जहाज चला जा रहा है। उसके पीछे एक छोटी डोंगी (नाव) बँधी है। जहाज के साथ-साथ डोंगी भी जल्दी ही ठीक स्थान पर पहुंच जायेगी....इसमें उसका बोझ भी जहाज ही अपनी ताकत से खींच रहा है। डोंगी को तो स्वयं कोई साधन भी नहीं करना पड़ रहा। जबकि अगर उस डोंगी को जहाज से खोलकर अलग चलाया जाये तो सर्वप्रथम स्वयं खींचने वाले को खूब ताकत लगानी पड़ेगी.....समुद्र के तेज भंवरों तूफानों से अकेले जुझना पड़ेगा और अपने निशान पर इतना संघर्ष करने पर भी पहुँचेगी या नहीं वह भी प्रश्न है। यह उदाहरण हमारे जीवन में 'गुरु' की आवश्यकता को स्पष्ट बताता है कि जहाज के समान समर्थ गुरु अपने शिष्य का सब प्रकार का भार अपने कंधों पर लेकर उसके चैतन्य का समुचित विकास करके साधना को चरम भूमिका पर ले जाकर स्वयं जैसे सुख की ही अनुभूति कराता है। महर्षि अरविन्द ने तो इससे अधिक स्पष्ट कहा है–

No body by his own unaided efforts can transcend the crude nature.

अर्थात् अपने प्रयत्न से–बिना गुरु सहायता–कोई भी साधक स्वभाव से परे हो ही नहीं सकता। और स्वभाव से परे हुए बिना प्रभु की मूर्ति को सिद्ध कैसे कर पायेंगे?

सच में, जिस प्रकार देह का जीवन ऑक्सीजन है, उसी प्रकार आत्मा का जीवन 'सच्चा संत' ही है। इसलिये ही स्वयं प्रभु जीव पर खूब करुणा करके स्वयं या सच्चे पवित्र निर्मल संत द्वारा कल्याण योजना लेकर मानव स्वरूप में धरती पर आते हैं। जाने अनजाने जो भी उनके सम्बन्ध में आता है, उसे मुक्ति व भुक्ति देकर न्याल कर देते हैं व जो शिष्य प्रभु प्राप्ति के लिये अपने आपको मिटाकर अपने सर्वस्व का याहोम कर देता है उसे 'गुरु' स्वयं जैसा ही बना देता है।

परन्तु ऐसे सच्चे गुरु की पहचान कैसे होवे? अन्धविश्वास में एक दूसरे के पीछे दौड़ना–वह मूर्खता है। प.पू. काकाजी महाराज के मुँह से तो हम सबने कितनी बार दावे से कहते सुना था– ''**मुझे नाइट्रिक एसिड में डालकर पूरा** test **कर लो। मेरी** factory **के** samples **देखने के बाद** Consignment Basis **पर माल खरीदो।**'' सो गुरु बनाने से पहले तीन चीजें देख लेनी चाहिए–

- ☐ गुरु का स्वयं का वर्तन,
- ☐ उनके गुरू कैसे? और
- ☐ गुरु का सेवन करते हुए शिष्यों का वर्तन।

यह तीन चीजें देखकर ही 'गुरु' करना चाहिये।

हम सभी ने अपने प्राणप्रिय प्रभु प.पू. काकाजी में इन सभी गुणों का सम्यक् दर्शन किया था। प.पू. पप्पाजी, प.पू. हरिप्रसादस्वामिजी, प.पू. अक्षरविहारीस्वामिजी, पू. साहेब भी आज

वही गुणातीत परम्परा के ज्योतिर्धर हैं। इन सभी ने अपने गुरु गुरुहरि योगीजी महाराज के प्रति अनोखी गुरुभक्ति अदा करके ऐसे अनेक आदर्शरूप उदाहरण रख दिये जिससे आनेवाली भावी पीढ़ियाँ कभी भी उनका ऋण नहीं चुका पायेंगी। गुरुहरि योगीजी महाराज के मुख से निकला एक शब्द–आज्ञा प.पू. काकाजी के लिये स्वाति बिन्दु समान थी। जैसे चातक स्वाति नक्षत्र से होने वाले वर्षा की बूंद को नीचे नहीं गिरने देकर अध्धर ही झेल लेता है वैसे ही प.पू. काकाजी ने गुरुहरि योगीजी महाराज का एक भी वचन नीचे नहीं गिरने दिया.....गुरुहरि योगीजी महाराज ने भी अपने इस हीरे को अनेक प्रकार के तराशा। सांबरकाठा में नन्दाजी के लिये चुनाव लड़ने जाने की आज्ञा की, जबकि उस समय प.पू. काकाजी का लाखों का व्यापार फैला हुआ था और राजनैतिक चुनाव लड़ने का आध्यात्मिक साधना के साथ भला क्या सम्बन्ध? पर, पू. काकाजी ने सत्यकाम जाबाली की तरह बिना दिमाग लगाये सब व्यवहार बाजु पर रखकर प्रथम 'गुरुआज्ञा' को ही स्थान दिया और चुनाव लड़ने कूद पड़े। संतों की, स्वयं गुरु की, परोक्ष प्रभु की मूर्ति की, मन्दिर की सेवा करने तो हम तैयार हो भी जायें–परन्तु भले ही संत की आज्ञा हो–पर राजनैतिक नेता के लिये चुनाव लड़ने को भक्ति समझने हमारा दिमाग कभी तैयार नहीं होगा। लेकिन जैसे इस शिष्य ने गुरु के वचन में अतिशय दिव्यभाव रखा और गुरु के पास अपना कुछ प्रिय नहीं गिना-तो गुरु ने भी अत्यधिक प्रसन्नता के फलस्वरूप इस अनोखे शिष्य को जगत के व्यावाहरिक चुनाव व अक्षरधाम का गढ़ दोनों में विजयी बनाया। इस प्रकार प.पू. काकाजी ने **'गुरुपूजन' व 'गुरुदक्षिणा' की एक नयी विधि की शुरुआत करवाई ! स्वयं के गुरु की हरेक क्रिया में दिव्यभाव-निर्दोषभाव–** वही सही अर्थ में सच्चा गुरुपूजन है।

जीव बेचारा साधन करेगा भी क्या? मू.अ.मू. गुणातीतानन्दस्वामी की बातों में लिखा है कि मच्छर कितनी भी अपनी ताकत लगाये, पर कभी भी गरुड़ की गति को पा नहीं सकता परन्तु अगर गरुड़ के पंखों में बैठ जाये तो उसे अपनी ताकत भी नहीं लगानी पड़ेगी व गरुड़ की गति को पा जायेगा। ठीक उसी प्रकार जीव की स्वयं की कोई ताकत नहीं, पर अगर समर्थ गुरु की गोद में अपने माने सत्य, आधार, मूल्यांकन, मान्यतायें, आदर्श, बल छोड़कर बैठ जायें तो प्रकृति-पुरुष के भावों से परे का गुणातीत गुरु लोहे जैसे स्वभाव-प्रकृति वाले को भी अपना स्पर्श देकर स्वयं जैसा ही पारसरूप बना देते हैं।

'गरुड़ के पंखों में बैठना क्या?' प्रत्यक्ष संत के सम्बन्ध में अखंड रहना। उन्हें ही याद करना, उनका ही बल लेना, जीवन की प्रत्येक सेकण्ड प्रत्यक्ष स्वरूप की सत्ता को स्वीकार करके प्राप्ति की मस्ती में रहना। मेरे गुरु पल-पल मुझे देख रहे हैं, मेरे गुरु को क्या जँचता है–बस उसी अनुसंधान में रहकर, इन्द्रियाँ–अंतःकरण के भावों में ना फंसकर हर पल जाग्रत रहना।

आज तो सुवर्ण युग है। अक्षरधाम के धाम, धामी और मुक्तों का समाज पृथ्वी पर साकार दिखाई पड़ता है। अपने यहाँ तो महाराज की कैसी नितरती केवल करुणा....? वास्तव में गुणातीत गुरु ही हमारी सारी साधना स्वयं करते हैं....गुणातीत गुरु ही सेवक की पल-पल संभाल रखता है। सेवक को याद करके संकल्प से सेता है। सेवक को बल देता है, सेवक के व्यावहारिक व आत्मिक विकास के लिये छूपा भजन व छूपा परिश्रम करता रहता है। इससे भी अधिक मेरा शिष्य कब मेरी तरह ही अक्षरधाम के सुख, शांति, आनन्द का भोक्ता

बनें.....स्वयं में भगवान प्रगटाये और दूसरों को बाँटें—इसी एकमात्र चाहना से वह शिष्य का जतन करता रहता है। ऐसे गुणातीत गुरु के परिश्रम की, उसके ऋण को अदा करने की हम कल्पना भी क्या कर पायेंगे?

आइये, हम सब गुरुपूर्णिमा के पावन अवसर पर और कुछ नहीं कर पायें, तो दो हाथ जोड़कर दिल की सच्चाई से प्रार्थना करें:

हे महाराज ! हे स्वामी ! हे प्रत्यक्ष गुणातीत स्वरूपों ! हम सबको आपने समर्थ गुरुओं की सेरे छाया में रखकर इस अक्षरधाम के गुणातीत समाज में रहने का अनमोल मौका दिया है। तो उन्हें राजी करने, हम सब मिलजुल कर आपकी स्मृति करके, आपकी प्रसन्नता हेतु नियमित भजन-प्रार्थना अचूक करें। श्रद्धा व विश्वास रखकर निष्कपट भाव से सेवा—समागम करते रहे। मन, कर्म, वचन से, महिमा से, दूसरों के दोष देखे बिना सेवा में जुड़े रहकर सब निर्दोषभाव—दिव्यभाव रखें। आपस में मिलजुलकर आत्मीयता से आनन्द करते हुए संप, सुहृदभाव व एकता जो आपको खूब पसन्द है वह रखकर ही सब क्रियायोग करें। आप के साथ के सम्बन्ध में आड़े आते स्वभाव, प्रकृति, मान्यतायें खुद का ज्ञानअहम्, आलस, प्रमाद, गाफलाई रूपी हमारी कमजोरियाँ आज गुरुदक्षिणा के रूप में आपके चरणों में भेंट रखें।

हम विचार करें कि हमारे गुरु कैसे? जो हमारी ऐसी भेंट को भी स्वीकार करके प्रसन्न होते हैं और उसी को वह हमारा सच्चा 'गुरुपूजन' सच्ची गुरु पूर्णिमा मानकर बदले में हमें देह रहते हुए अक्षरधाम के शाश्वत् सुख, शान्ति, आनन्द का भोक्ता बनाना चाहते हैं.....धन्य धन्य है गुणातीत गुरु को.....

✪ ✪ ✪ ✪

ब्रह्मप्रवाह

सत्संगशुद्धि

हम सब प्रगट गुरुश्री के उपासक कहलाये जाते हैं। ढोल बजा-बजा कर पू. स्वामिश्री (बापा) की स्वयं भगवान के समान महिमा गाते हैं। हमने मान लिया है कि हम ठीक सही रीत से प्रगट का भजन कर रहे हैं, सेवा कर रहे हैं, शरीर घिस रहे हैं—सो हमारा तो कल्याण हो चुका है।

पर वास्तविकता में क्या नजर आता है? पहला अंक 'एक' ही अभी तो लगा नहीं। यह तो हम अंक '1' को आगे लगाये बिना ही जीरो (0) लगाते चले जा रहे हैं और खुश होकर हमारे व्यवहार में, विषय तृप्ति में मस्त हो जाते हैं परन्तु थोड़ा-सा कष्ट आने पू. बापा के ऊपर खफा हो जाते हैं।

पर उनकी कृपादृष्टि, आशीर्वाद कहाँ से फलेंगे? उन्हें तो रक्षा ही करनी है। वही उनका तो मूल स्वभाव है। पर हम बेकदर उनकी सच्ची महिमा न जानकर—महिमा सिर्फ इन्द्रियों में ही ऊपर-ऊपर से बसायी है—हम अपने आपको ही धोखा देते रहते हैं। हमारे जीव में पू. स्वामिश्री की अनुवृत्ति (मर्जी) पालने की लगन—डूबते हुए व्यक्ति की तरह की व्याकुलता नहीं है। और तब तक प्रगट के सुख का अनुभव नहीं कर पायेंगे व

कृपा या आशीर्वाद या वचन भी फलेगा नहीं।

अमृत परावाणी तो राजा या गरीब, बड़ा या छोटा सभी के लिये है। पर उनके वचन तपतपाते-धधकते लोहे पर पानी की तरह या रण में पड़े छींटे की तरह उड़ गये ! हमारे देश के सत्संगियों में यह हो रहा है। बरसात तो सब जगह एक जैसी ही है, पर 'कालु' नाम की मछली में बरसात की एक बूँद पड़ते ही मोती बन जाता है। पर यहाँ तो हममें बड़े कहलाये जाने वालों में व बड़ी ऊँची आवाज में जोर-जोर से भजन करने वालों में भी यह जरा सा लेशमात्र भी दिखाई नहीं पड़ता। क्या हमने पू. स्वामिजी (बापा) को सचमुच पहचाना है? बहीखाता निकाल कर अपने अन्तःकरण में टटोलें तो जरूर जवाब मिल जायेगा। पू. स्वामिजी को—वे जैसे हैं वैसे—पहचान कर, प्रगट अक्षर-पुरुषोत्तम की उपासना दृढ़ करके देह रहते हुए ही हम ब्रह्मभाव को पायें तब ही उन्हें (बापा को) शांति होगी। वर्ना, वे तो अति दयालु हैं, सो हमारे करोड़ों गुनाह माफ करते हैं, रक्षा करते हैं व नरक चौरासी योनि से केवल दर्शन के प्रताप से ही बचा लेते हैं। तब भी हमारे अन्तरचक्षु (अन्तर की आँखें) अभी खुले नहीं।

समुद्र के भीतर गहराई में जायें तब ही मोती मिलता है, किनारे पर से नहीं। इसलिये हमारे ख्यालों, भ्रमों और कुसंगीपन से अजाग्रत मन पर पड़ी प्रणालिकाएं दूर करके स्वयंके भीतर निरीक्षण करके लाभ हानि सोचें व अन्य सत्संगियों को भी इस आंतरिक शुद्धि के रास्ते पर ले जायें तो पू. स्वामिजी की तबियत जरूर अच्छी हो जायेगी। क्योंकि—उन्हें तो यही दुःख है और ऐसे निष्ठावान भक्तों—वही उनका जीवन व प्राण है। फिर उनकी ताकत नहीं है कि हमें धोखा देकर चल बसे—प्रगट का सुख देना बन्द कर दें।

इसलिये निम्न प्रश्नों के हम कितना जल्दी हल निकालें उतनी हमारी शुद्धि—और तब ही उन्हें पहचाना माना जाये। बाकी तो सिर्फ ऊपर-ऊपर से बातें व धोखाधड़ी करने वाले ही माने जायेंगे। इससे तो अफ्रीका के सत्संगियों और यहाँ की विधवायें हमसे बढ़कर हैं। सो अपने आप में कसर ढूँढें और पू. स्वामिश्री के पास निष्कपट रूप से (खुले मन से) अन्तराय रखे बिना वर्तें तो यहीं घर-घर अक्षरधाम बन जायेगा। यह तो प्रगट की महिमा और सत्ता का सबूत (प्रमाण) है।

अब मुख्य बातेंः—

1. हमने लिखवाई हुई जयंती की भेंट दे दी है?
2. हमने लिखवाया हुआ चन्दा, दान, थाल की रकम दे दी है?
3. निष्कपट रूप से हम अपनी आय का दसवाँ या बीसवाँ हिस्सा पू. बापा को सर्वज्ञ-अन्तर्यामी मान कर दे देते हैं?
4. हमारे पवित्र धामों की जमीन, आय, मन्दिर की उपज की हम ठीक से संभाल रखते हैं?
5. हमारे मन्दिर स्वच्छ, साफ सुथरे व निर्मल भावनाओं से भरपूर रखे जाते हैं? खाने करने, सोने में—सुविधा के लिये, हमारी जाति, वर्ण, कुल आदि के अभियानों को आगे ला करके झगड़ते हैं?

   प्रगट प्रभु के पास शुद्ध हृदय से केवल आत्यंतिक कल्याण के लिये ही जाते हैं?
6. हम अपने नियमों आज्ञा और उपासना में दृढ़ हैं? यदि गल्तियाँ हो जायें, नियम—पंच वर्तमान टूट जायें, तो प्रभु के पास माफी माँग कर वर्तन बदलते हैं?
7. मान, क्रोध, ईर्ष्या, जलन और कुसंग के शब्दों में हम फँस जाते हैं?

8. हम प्रगट के भक्त तो कहे जाते हैं, पर पू. बापा की (प्रगट की) मर्जी के मुताबिक बरतते हैं? गढ़डा मन्दिर में अक्षर पुरुषोत्तम की उपासना का जो डंका बजाना हमारे मालिक ने पक्का किया है, वहाँ सर्वस्व निष्कपट रूप से उनके कहे मुताबिक तन, मन, धन से हमारे हिस्से की सेवा जो हमसे बन सके वह सब करते हैं? या एहसान करने की वृत्ति में या मान पाने की वृत्ति में या बड़प्पन में बहकर करते हैं?

सचमुच ही पू. स्वामिजी को पहचाना हो तो ऊपर लिखी बातें बनें ही नहीं। उसी का उन्हें (बापा को) दुःख है। इसलिये, प्रगट अक्षरधाम यहीं है, धामी और मुक्तों भी हैं। कहाँ हैं कब प्रकाशेंगे यही अब इस विनती के बाद देखना है। यह तो अमृत का सागर है। जितना लूट सको उतना लूट लो। वर्ना धोखाधड़ी में–ढोंगबाजी में, बनावटों में रह जाओगे और पत्थर से सिर कूटना पड़ेगा। तो सभी सत्संगी तन, मन, धन से–जितना बन सके–सर्वस्व पू. स्वामिजी की मर्जी के मुताबिक ही वर्ते व पुरानी जिम्मेदारियों से तुरन्त मुक्त हों। तब तक उनकी कृपा नहीं ही होगी वह मेरा स्वानुभव है। सो यदि कुछ ज्यादा लिखा गया हो तो माफ करना। पू. बापा को व सत्संगियों को नम्र विनती सहित–जय स्वामिनारायण !'

–प.पू. काकाजी महाराज

सप्टें. अक्टू., 1950

❋ ❋ ❋

जन्म-कर्म च मे दिव्यं—

अफ्रीका दारेसलाम में World Peace Mission के दो भाइयों–अरविन्द आश्रम के दो निजी सेवक डॉ० स्मिथ और मुखरजी गुरुहरि योगीजी महाराज को मिलने व आशीर्वाद लेने आये थे। स्वामिश्री के प्रथम दर्शन से ही वह स्तब्ध रह गये। स्वामिश्री ने उन्हें बातचीत करने को कहा, पर वह बोलेः हमें कुछ कहना नहीं है–पूछना नहीं है। दर्शन से ही शांति-2 हो गई है। सचमुच ! स्वामिश्री तो माताजी और महर्षि अरविन्द जैसे ही समर्थ व आत्मदर्शन वाले पुरुष हैं। इस बात में जरा भी शंका नहीं है। इसलिये वह हमें आशीर्वाद दें वही बहुत है।'

इससे अधिक वह कुछ बोल नहीं सके। केवल स्वामिश्री के पास आशीर्वाद माँगे। स्वामिश्री ने उन्हें प्रेम से आशीर्वाद दिये। दोनों भाईयों स्वामिश्री की वाणी सुनकर गद्‌गद् हो गये और कहने लगेः 'आपकी वाणी आत्मा की है और वह हम समझ सकते हैं।'

सच में भगवान रखे संत की यह पहचान है कि उसके दर्शनमात्र से दिल व दिमाग दोनों स्वयं ही झुक जाये.....प.पू. काकाजी तो इससे भी आगे बात कहते थे कि–सच्चे संत के दर्शन अगर सब चिन्ता छोड़कर–निर्विचार बैठ कर करो तो संत के शरीर से ऐसी किरणें निकलती हैं जो मन, बुद्धि, चित्त को शुद्ध करती हैं–ठण्डक पहुँचाती है....सच्चे संत को कहना नहीं पड़ता कि मैने प्रभु रखे हैं। पर हम तो संत के सामने बैठकर अपने ही अशुद्ध व मलिन विचार इतने अधिक फेंकते रहते हैं कि उनके शरीर से निकलती किरणों की गरिमा हमें महसूस नहीं होती और हम उस दर्शन का आनन्द नहीं ले पाते।

PUBLISHED BY SADHU MUKUNDJIVANDAS FOR YOGI DIVINE SOCIETY,
A 103, Ashok vihar-III, Swaminarayan Marg, Kakaji Lane,
Delhi-110 052. (India) Tel. : 7229327, 7128838
Printed at **R.P. Printers**, Shahadra, Delhi-110032